वैशेषिक दर्शन में दिशा और काल निर्धारण

शोधार्थी– पूनम रानी
संस्कृत विभाग, म.द.वि. रोहतक

दिशा की सिद्धि

आचार्य प्रशस्तपाद के अनुसार दिशा एक अतीन्द्रिय द्रव्य है अर्थात् उसका प्रत्यक्ष संभव नहीं, ऐसी स्थिति में दिशा का ज्ञान अनुमान प्रमाण द्वारा प्राप्त होता है, पूर्वापर दिशा प्रतीतियाँ ही दिशा की साधक हेतु हैं। यह पूर्व है अथवा यह पश्चिम है इत्यादि प्रतीतियों से अनुमिति होने वाला द्रव्य दिक् है।[प] सामान्यरूप से जगत् की विभिन्न मूर्त्त वस्तुओं की परस्पर सम्बद्ध स्थिति से ही दिशा की सिद्धि हो जाती है। उदयनाचार्य ने अनियत परत्व के असमवाय से समवेत व मूर्त्तत्व रहित द्रव्य को दिशा कहा है।[पप] सर्वदर्शनसंग्रहकार के अनुसार जिसमें कोई विशेष गुण नहीं, केवल सामान्य गुण है वो अणु नहीं किन्तु महत् परिमाण युक्त है तथा काल से भिन्न है उसे दिशा कहा जाता है।[पपप] अन्नं भट्ट ने प्राची आदि व्यवहार के हेतु को दिशा कहा है।[पअ] इस प्रकार वैशेषिक दर्शन में दिशा को एक पृथक् द्रव्य के रूप में स्वीकार किया गया है तथा इसका उद्देश्य दो असम्बद्ध पदार्थों के मध्य संयुक्त–संयोग सम्बन्ध स्थापित करना है।

दिशा के गुण

दिशा पाँच गुणी द्रव्य है – संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग, दिशा के इन सभी गुणों का पृथक्–पृथक् विश्लेषण अधोलिखित है –

संख्या

काल द्रव्य की भाँति दिशा भी एक है, इसके अन्य भेद पूर्व, पश्चिम आदि उपाधि से हैं। दिशा में पूर्व पश्चिमादि अनेक प्रतीतियों की उपपत्ति सम्भव है। वास्तव में यह एक है।

परिमाण

दिशा परम महत् परिमाण वाली एक विभु द्रव्य है।[अ] यह एक सर्वव्यापक द्रव्य होने से इसमें दूरी, निकटता इत्यादि सम्बन्धों की प्रतीतियाँ हो सकती हैं। दिग्भागों में व्याप्त सीमित परिमाण वाली वस्तुओं के साथ इसका सम्बन्ध होने पर भी यह विभु और मूर्त्त द्रव्य है।

पृथक्त्व, संयोग और विभाग

जो द्रव्य पदार्थ एक होता है, वह पृथक्त्व गुणवाला भी होता है। जैसे काल में संयोग गुण प्राप्त होता है, वैसे ही दिशा में भी मानना चाहिए तथा जिस तरह से विनाशशील संयोग की सत्ता से काल में विभाग गुण माना है, उसी तरह दिशा में भी स्वीकृत हो जाता है।

जिस प्रकार से सब द्रव्य काल में अवस्थित हैं, उसी तरह से दिशा में भी हैं। काल एवं दिशा सृष्टि की प्राग्भावी दशाएँ हैं, उनके कार्य एवं स्वरूप के विषय में कुछ दार्शनिकों का मतभेद है। परन्तु ये दोनों अलग–अलग पूर्ण द्रव्य हैं।

दिशा के भेद

यद्यपि दिशा एक है तथापि आचार्य प्रशस्तपाद ने इसके दस औपाधिक भेद बताये हैं। उनके अनुसार दस दिशाएँ उनके अधिष्ठाता लोकपालों के अनुसार हैं। जिनका वर्णन निम्नलिखित है –

माहेन्द्री (इन्द्र)	पूर्व
वैश्वानरी (अग्नि)	दक्षिण पूर्व
याम्या (यमदेव)	दक्षिण
नैर्ऋत (नैर्ऋत)	दक्षिण पश्चिम
वारुणी (वरुणदेव)	पश्चिम
वायव्या (वायु)	उत्तर पश्चिम
कौबेरी (कुबेर)	उत्तर
ऐशानी (ईशान)	उत्तर
ब्रह्मी (ब्रह्मा)	उर्ध्व
नागी (नाग व सर्प)	अधः

प्रत्येक दिशा को एक–एक देवता से अधिष्ठित मानकर की गई संज्ञाओं को निम्न आरेख के द्वारा समझा जा सकता है।

उक्त दस दिशाओं के अतिरिक्त सेतुटीकाकार पद्मनाभ मिश्र तथा शिवादित्य ने एक–एक पृथक् दिशा का भी उल्लेख किया है। पद्मनाभ मिश्र ने प्राची तथा अवाची अथवा उर्ध्व व अधोभाग के मध्य में स्थित ग्यारवीं दिशा की परिकल्पना की है।[अप]

शिवादित्य ने ग्यारहवीं दिशा को रौद्री नाम दिया है जो उर्ध्व व अधोदिशा के मध्य स्थित है जिसे सामान्यतः अन्तरिक्ष कहा जाता है।[अपप] अतः स्पष्ट है कि वैशेषिक दर्शन में संख्या की दृष्टि से भी यह बात सिद्ध हो जाती है कि एक से अधिक दिशा की परिकल्पना नहीं कि जा सकती एक से अधिक दिशा स्वीकार करने पर सर्वत्र अव्यवस्था व्याप्त हो जायेगी।[अपपप] उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते है कि वैशेषिक दर्शन में काल एवं दिशा दोनों को ही पृथिवी, जल आदि की भांति वास्तविक सत्तायें स्वीकार किया गया है जिसके परिणामस्वरूप सभी द्रव्य केवल दिशा में ही नहीं अपितु काल में भी अवस्थित हैं। आधुनिक चिन्तकों ने इन वैशेषिक सिद्धान्तों का न केवल समर्थन किया है अपितु अपने तर्क से द्रव्य सिद्धान्त को सबल बनाया है।

काल का लक्षण

वैशेषिक दर्शन के अनुसार काल सत् एवं स्वतन्त्र द्रव्य है। जो सभी वस्तुओं का कालिक दृष्टि से आधार हो, जो परत्व, अपरत्व, युगपत्, चिर, क्षिप्र इत्यादि प्रतीतियों का बोध कराने वाला हो उसे काल द्रव्य कहते हैं। अर्थात् जगत् की सभी उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय रूपी क्रियाओं के पीछे जो सत्ता विद्यमान रहती है, वह काल है। अतः न्याय वैशेषिक में काल को प्रत्येक क्रिया की अनिवार्य प्राग्दशा के रूप में माना गया है।[पग]

काल कुछ ऐसी प्रतीतियों का कारण है जो घटनाओं के साथ जुड़ी हुई होती हैं। यह बहुत सी वस्तुओं के उत्पादन उनके व्यापारों के ज्ञान का सहकारी कारणीभूत काल है। उसी से युगपत् प्रत्यय होता है और कार्यों की उत्पत्ति और विनाश के बीच की क्रियाओं के आधार जितने क्षण है, उन्ही की न्यूनता और अधिकता से देरी और शीघ्रता की प्रतीति होती है। अर्थात् काल परत्व एवं अपरत्व का कारण एवं सब जागतिक कार्यों की उत्पत्ति का निमित्त है।

वैशेषिक सूत्रकार ने काल के विषय में कहा है कि जन्य कार्यों का निमित्त कारण ही काल है, तो नित्यों में न होने से स्पष्ट है[ग] अर्थात् सभी नित्य द्रव्यों में परापरादि प्रतीतियों का अभाव देखा जाता है, परन्तु जन्य वस्तुओं में उक्त प्रतीतियाँ विद्यमान रहने से काल सभी जन्य वस्तुओं का निमित्त कारण होता है।

काल की सिद्धि

महर्षि कणाद ने काल की सिद्धि के लिए परत्व, अपरत्व, युगपत्, चिर तथा क्षिप्र प्रतीतियों को काल का हेतु बताया है।[गप] आचार्य प्रशस्तपाद ने इन्ही पाँच विषयों के आधार पर द्रव्यत्व की सिद्धि की है।[गपप] काल की सिद्धि के लिए उन्होंने निम्न पाँच कारण दिये हैं –

कालिक परत्वापरत्व

दिशाओं के द्वारा ज्ञात किये जाने वाले परत्वापरत्व से भिन्न ज्येष्ठ, कनिष्ठ आदि कालिक परत्वापरत्व है। किसी का छोटा या बड़ा होना ऐसा ज्ञान परत्वापरत्व दिशा के द्वारा या अन्य किसी द्रव्य के द्वारा नहीं जाना जा सकता यह ज्ञान मात्र काल द्वारा संभव है। किरणावलीकार के मतानुसार विशिष्ट परत्वादि प्रतीतियों का हेतु काल एक पृथक् होता है जो उक्त सभी द्रव्यों से व्यतिरिक्त है।[गपपप]

युगपत् उत्पत्ति

एक साथ उत्पन्न होने वाले कार्य द्रव्यों का केवल काल के द्वारा निर्वचन हो सकता है जिस प्रकार अमुक वस्तु की उत्पत्ति एक ही क्षण में हुई है ऐसा निष्कर्ष काल से अतिरिक्त द्रव्य से संभव नहीं। अतः काल द्रव्य है ऐसी सिद्धि होती है।

अयुगपत् उत्पत्ति

समवेत सम्बन्ध न होकर क्रमशः उत्पन्न होने वाली वस्तु का निर्वचन भी काल के द्वारा ही होता है।

चिरोत्पत्ति

किसी कार्य का विलम्ब से सम्पन्न होना भी काल द्रव्यत्व का परिणाम है।

अचिरोत्पत्ति

शीघ्र उत्पन्न होने को भी काल के द्वारा निर्दिष्ट किया जा सकता है। जयन्त भट्ट ने अत्यन्त सटीक युक्ति उपस्थित करते हुए कहा है कि काल किसी अन्य द्रव्य पर आश्रित नहीं है अतः अनाश्रित होने से ही इसका द्रव्यत्व सिद्ध होता है।[गपअ]

काल के गुण

काल में पाँच गुण स्वीकार किए गए है – संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग जिनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है :–

संख्या

काल की ज्ञापक प्रतीतियाँ सभी कालों में बराबर रहती हैं। अतः काल एक और विभु द्रव्य है।[गअ] यद्यपि काल के भूत, भविष्यत और वर्तमान तीन भेद हैं। किन्तु ये भेद औपाधिक है तात्त्विक नहीं। अतः काल एक है।

परिमाण

काल को प्रत्येक वस्तु का निमित्त कारण माना गया है इसलिए इसका परिमाण महत् है, क्योंकि सर्वव्यापक और विभु द्रव्य ही परत्व और अपरत्व आदि प्रतीतियों का सर्वाधिक निमित्त कारण हो सकता है। अतः यह सभी अनित्य वस्तुओं का निमित्त कारण विभु और महत् परिमाण है।[गअप]

पृथक्त्व

काल की एक संख्या से पता चलता है कि उसमें पृथक्त्व गुण भी विद्यमान है। क्योंकि जो एक होता है वह अन्यों से पृथक् भी होता है। अतः काल एक है और अन्य द्रव्यों से पृथक् भी है।[गअपप]

संयोग

काल परत्व, अपरत्व आदि प्रतीतियों का कारण है और परत्व आदि उनके जनक हैं तथा उपचार वश उनका काल से संयोग होने से काल में संयोग गुण मान लेना चाहिए।[गअपपप]

विभाग

जहाँ पर संयोग होता है वहाँ पर विभाग भी अवश्य ही पाया जाता है। यहाँ पर काल और परत्व आदि का संयोग है। अतः उसका विनाश भी अपेक्षित है।[गपग]

काल के भेद

वैशेषिक दर्शन द्रव्य विवेचन के अनुसार तो तत्त्वतः काल, अखण्ड, अविभाज्य, विभु, व्यापक एवं नित्य द्रव्य एक ही है। किन्तु व्यवहार की दृष्टि से काल के तीन भेद हैं – अतीत, वर्तमान एवं अनागत तथापि काल का यह विभाजन औपाधिक है, वास्तविक नहीं। वास्तव में यह एक ही है, परन्तु उपाधियों के साथ मिलकर यह तीन रूप में दिखाई देता है।[गग]

यह काल जब सांसारिक घटनाओं से संयुक्त होता है तो वर्तमान, अतीत और भविष्य के रूप में अपनी पहचान करवाता है। वास्तविक रूप से यह सांसारिक सभी चेष्टाओं से दूर है, उनके साथ इसका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। जब कोई घटना आरम्भ तो हो गई है परन्तु सम्पन्न नहीं हुई वह भूतकाल को बतलाती है तथा घटना अभी प्रारम्भ ही नहीं हुई है, उसे भविष्यत काल कहते हैं। जब कोई क्रिया चल रही

हो तो उसे वर्तमान कहते हैं। अगर वर्तमान काल नहीं होगा तो भूत एवं भविष्यत भी नहीं हो सकते, क्योंकि वर्तमान इन दोनों कालों का आधार है।

इस विवेचन के अनुसार काल एक सत्, अविभाज्य, असीम, स्वतन्त्र निरवयव एवं नित्य द्रव्य है। क्षण–लव–निमेष इत्यादि इसकी केवल व्यावहारिक उपाधियाँ मात्र हैं, इसके अवयवों का अभाव होने से यह निरवयव है, इसके विभाग इत्यादि का विनाश होने पर भी इसकी सत्ता विद्यमान रहती है। अतः यह नित्य भी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[प] दिक् पूर्वीपरादिप्रत्ययलिङ्ग। प्रशस्तपादभाष्य, प्रशस्तपादाचार्य, पृ० 85
[पप] अनियतपरत्वासमवायिसमवायिनी मूर्त्तत्वरहिता दिक्। लक्षाणावली, उदयनाचार्य, पृ० 14
[पपप] अकालत्वे सत्यविशेष गुण महती दिक्। सर्वदर्शनसंग्रह, माधवाचार्य, पृ० 413
[पअ] प्राच्यादिव्यवहार हेतुर्दिक्। तर्कसंग्रह, अन्नं भट्ट, पृ० 46
[अ] न्यायकन्दली, श्रीधराचार्य, पृ० 164
[अप] क्वचिदेकादश दिशो गणिताः तत्र यथा प्राच्यवाच्योरन्तराले दिक् प्रागवाची तथोर्ध्वाऽद्रन्त रालंदिक्संज्ञयेति दिक्। सेतुटीका, पद्मनाभ मिश्र, पृ० 357
[अपप] सप्तपदार्थी, शिवादित्याचार्य, पृ० 18
[अपपप] Bhaduri, S.N., Study in Nyaya-vaisesika metaphysics, p. 226-27
[पग] It is for this reason that it has been reganded as a necessary precondition in Nyaya and Vaisesika of every kind of action, Mishra CMNV, p. 160
[ग] नित्येषु अभावत् अनित्येषु भावात्कारणं कालख्येति। वैशेषिक सूत्र, महर्षि कणाद, सूत्र 2.2.9
[गप] अपरास्मिन्नपरं युगपच्चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि। वैशेषिक सूत्र, महर्षि कणाद, सूत्र 2.2.6
[गपप] काल परापख्यतिकरयौगपद्याचिरक्षिप्रप्रत्ययलिंगम्। प्रशस्तपादभाष्य, प्रशस्तपादाचार्य, पृ० 41
[गपपप] कालस्य तू विप्रकृष्टक्रियोपसंक्रयणशक्तथैव सिद्धेर्नायं प्रसंग इति सर्वमवदातम्, किरणावली, उदयनाचार्य, पृ० 77
[गपअ] अनाश्रितस्य। अनाश्रितत्ववादेव द्रव्यम्। न्यायममञ्जरी, जयन्त भट्ट, भाग–1, पृ० 126
[गअ] न्यायकन्दली, श्रीधराचार्य, पृ० 159
[गअप] वैशेषिक सूत्र, महर्षि कणाद, सूत्र 7.1.25, प्रशस्तपादभाष्य, प्रशस्तपादाचार्य, पृ० 43
[गअपप] प्रशस्तपादभाष्य, प्रशस्तपादाचार्य, पृ० 43
[गअपपप] किरणावली, उदयनाचार्य, पृ० 119
[गपग] प्रशस्तपादभाष्य, प्रशस्तपादाचार्य, पृ० 43
[गग] जन्यमात्रं कालोवाधिः, तर्कसंग्रह, अन्नं भट्ट, पृ० 132